मुठभेड़

रघुवीर सहाय

हिन्दी ADDA

मुठभेड़

https://www.hindiadda.com/muthabhed/

किसी ने बड़े सवेरे मुझे टेलीफोन से जगाया। वह जगानेवाली टेलीफोन ऑपरेटर नहीं थी। शिवराम की माँ मर गई थी। उस दिन बड़ी ठंड थी। वे लोग साढ़े दस-ग्यारह बजे चलेंगे।

छलाँग मारकर मैं बिस्तर से कूदा। पर उसके बाद क्या करूँ, एकदम से तय न कर पाया और खड़ा रह गया। साढ़े दस-ग्यारह में जो अनिश्चय था उसके हिसाब से जान पड़ा कि घर चलने के लिए बहुत समय है। तब मैं फिर बिस्तर में घुस गया। लेकिन फिर निकलकर रसोईघर की ओर दौड़ा। दौड़ने को वहाँ बहुत न था। पतीले में नहाने का पानी चढ़ाकर मैं फिर दौड़ा और इस बार सीधे छज्जे तक गया जो कि इस घर में हद थी और जहाँ अभी-अभी अखबारों का बंडल धड़ाम से आकर गिरा था।

सारे शहर के अखबार उसमें थे, सबको तख्त पर बिछाया। कितनी दयनीय स्थिति थी। सारी दुनिया में कुछ आदिमियों ने अपनी बुद्धि के अनुसार चौबीस घंटे के अंदर हमारी नियति को जहाँ-तहाँ से मोड़ने की कोशिश की थी। रात की पाली पर बोदे उपसंपादक को उसमें से चुनाव की कितनी सीमित आजादी थी। (क्या इसी को अखबार की स्वतंत्रता कहते हैं?) जो हो, उन्होंने भरसक अपनी मूर्खता से काम किया था और पाँचों अखबारों के पहले बड़े समाचार एक ही न थे। मैंने गर्व की साँस ली, पर दूसरे ही क्षण बाकी खबरें भी पृष्ठ पर कहीं-न-कहीं दिख जाने से सब बंटाधार हो गया।

उस वक्त तक शिवराम की माँ के मरने की खबर ही ताजी खबर थी। इसे एक कागज पर चींटी जैसे अक्षरों में लिखूँ और उसे अखबार में चिपका दूँ। पर सबमें नहीं। और फिर उस एक की हर एक प्रति में? एकाएक यह खयाल फेंककर मैंने कुछ उठाकर ओढ़ लिया। फिर तख्तवाले कमरे से बिस्तरवाले कमरे में चला, मगर देखा कि बीच के दरवाजे से नहीं जा सकते क्योंकि रात को वहाँ पता नहीं क्यों तिपाई इस तरह रख दी थी कि रास्ता छिंक गया था। तब बरामदे से होकर उस कमरे में जाना शुरू किया, मगर रसोईघर में चला गया और पतीले से पानी निकालने लगा, मगर वह गरम न था। तो भी निकाला और दाढ़ी बनाने के मग में डाला जिसको नीचे रखा ही था कि पतीला बहुत बड़ा मालूम हुआ और उसकी जगह भगौना चढ़ा दिया क्योंकि चाय पहले चाहिए। यह एक बहुत ही निजी, यहाँ तक कि छिपाने योग्य बात है, गुलामी की बात, पर यहाँ कौन देखता है और सारे घर में मैं अकेला था। चाहता तो नंगा हो जाता, पर बड़ी ठंड थी। अब मेरा हर काम निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हो रहा है। चाय, पहला प्याला गरम, दूसरा कम गरम, तीसरा कड़वा, आधा, बदजायका, खत्म। दौड़ा, चैन मिला। खूब अच्छा रहा। स्वस्थ, सुगठित और स्वच्छ।

अब मैं पहले से ज्यादा साफ समझने लगा था कि मुझे वक्त से शिवराम के यहाँ पहुँच जाना चाहिए। उबलते हुए पानी से नहाने से मेरा मकान रोशन हो गया था। घबराकर मैंने टेलीफोन उठाया। उसे रख दिया। बनियान पहनी और तौलिया खोलकर फेंक दी। यह रहा मेरा सुंदर शरीर, अपने बालों सहित, दोनों पैर एक-एक करके जाँघिए में डाले, कसा, आराम मिला। फिर दौड़ा। दूसरे कमरे में दरवाजा नहीं, रास्ता बंद बरामदे से होकर, समय से पहुँचा, पतलून के लिए समय से। फिर घड़ी पहनी, फिर मोजा, फिर कुछ और। आखिरकार मुझे पहनना बंद करना पड़ा।

मैं अच्छी-खासी चुस्त तैयारी के साथ घर से निकला था और इत्तिफाक से वक्त ऐसा था कि जो देखता यही समझता कि दफ्तर जा रहा हूँ। यह सबसे बड़ी विडंबना की बात थी, क्योंकि मैं ही जानता था कि मैं किस घपले में पड़ा हुआ था। मुझे जाकर अपने को सिर के बल अड़ा देना था। वह दफ्तर जाने में नहीं किया जाता। कितने दिन बाद मैंने जाना था कि मैं सीधे कहीं जाना चाहता हूँ। शिवराम का मकान पास था। सवारी से मैं वहाँ दन से पहुँचता, पर वह ज्यादा दन से हो जाता। मैं अपने पैरों चलने लगा। मैंने जाड़े से बचाव कर रखा था और मुझे सड़क पर अकेले बहुत अच्छा लग रहा था।

घर के सामने बाग में तमाम लोग आधा दायरा बनाकर खड़े हुए थे। माफ कीजिएगा, थोड़ी देर हो गई, मैं मुस्कराकर बहुत जोर से या बहुत जोर से मुस्कराकर कहना चाहता था, पर यह न करना ही ठीक समझा, इसलिए कि स्वर कितना ऊँचा रहे यह ठीक-ठीक, ठीक नहीं कर सका। सबसे पहले मुझे मिस्टर धर्मा ने देखा जो मुझ पर हमेशा के लिए यह छाप डाल देने में सफल हो चुके हैं कि मैं हर जगह देर से पहुँचता हूँ। वे मुस्कराए जिससे मुझे लगा कि वे एक और भद्दे, ठस, गधे हैं, सिर्फ उतने खूबसूरत नहीं।

तब मैंने उसे देख लिया। मैदान के बीचोबीच बाँस की टिकटी पड़ी हुई थी और उसके पास पालथी मारे नंग-धड़ंग शिवराम बैठा हुआ था।

मैं दायरे के एक छोर पर खड़ा हो गया। वहाँ से सब दिखाई पड़ता। दिन बड़ी सफाई से निकला था और उस तरह का मौसम था जिसमें जमीन दोपहर तक मुलायम रहती है।

लाश को लाओ, मैंने अपने मन में कहा और यह जोड़ दिया कि मैं आ गया हूँ। शिवराम का मंत्रोच्चारण शुद्ध है। वह बिल्कुल नंगा नहीं है।

बाकी लोगों ने मुझे एक-एक कर देखा। मैं उनमें से बहुतों को जानता था और कई ऐसे थे जिनके बारे में सिर्फ इतना मालूम था कि मुझे उनसे नफरत है। कुछ लोग मुझे

अच्छे लगते थे। एक बार, कम-से-कम एक बार, मैं न तो किसी को नफरत से देखूँगा, न पसंदगी से। यहाँ नहीं। किसी को देखूँगा ही नहीं। मैंने तय किया। यहाँ नहीं। उम्दा धूप में लोग अपने अंदर से एक तरह की चीज निकालकर बाहर फेंकने लगते हैं। वह लोग करते हैं ठीक, पर क्यों? अभी, इसी समय क्यों?

मेरे बिल्कुल पास बढ़ी दाढ़ीवाला एक आदमी खड़ा था। वह मेरी जात का और उसका कद बिल्कुल उस खास तरह से मँझोला था जैसा मेरी जातवालों का होता है। वह बार-बार नजरें उठाता। सिर नीचे किए हुए ही वह मुस्कराना शुरू करता और सिर उठाते-उठाते जब मुझे मुखातिब न पाता तो मुस्कराहट समेट अपना सिर नीचे कर लेता। एक जरा-सी लापरवाही और वह मुझे नमस्ते कर लेगा। मुझे याद है कि वह इस तरह नमस्ते करता है जैसे जाने कौन-से समझौते, जो मेरी जात के लोग अपनी खास बेईमानियों के साझीदारों से करते हैं, मैं इससे भी किए बैठा हूँ।

इतनी देर तक वह मुझसे नजरें मिलाने की कोशिश करता रहा कि मेरे मन में संदेह उठने लगा कि कहीं मैं इससे खामख्वाह नफरत तो नहीं कर रहा हूँ। फिर धीरे से मैंने यह जान लिया। हाँ, मैं बिल्कुल बिना वजह उससे नफरत कर रहा था। और यह कितनी अच्छी बात थी। सिवाय एक छोटी-सी घटना के और मुझे कुछ याद आया नहीं जिससे मेरी नफरत के कोई व्यक्तिगत माने होते। और वह भी कोई घटना न थी। एक बार मैं उसके दफ्तर गया था तो चाय तो मेज पर रखे था, मगर मेज की दराज से कुछ निकाल-निकालकर खाता जा रहा था। बराबर वह दोनों हाथ इस तरह नीचे कर लेता था जैसे इसने कुछ खाया ही न हो और मुँह ऐसे चलाता था जैसे खा थोड़े ही रहा है।

हाँड़ी में आग जलाई गई थी। अब मैंने देखा कि सभी लोग क्यारियों में अँखुओं के ऊपर खड़े थे। शिवराम की देह सुंदर थी। मेरे घर में जब इतने लोग आएँगे तो कहाँ खड़े होंगे?

क्या उसे यहाँ नहीं लाएँगे? मैं अंदर चलूँ? ठंडे सादे कमरे, धुला हुआ फर्श, अधेड़ औरतें, छोटी-सी लाश - छोटी-सी सिकुड़ी हुई बूढ़ी देह। शरीर को झकझोर देनेवाले हजार अनुभवों से कुटी-पिटी कुचली मींजी हुई देह। निपट गई वह देह, जो घर के अंदर सँभालकर रखी हुई है।

शिवराम हाथ में कुश लेकर कुछ बोला; उसका उच्चारण पुरोहित से अच्छा था। पुरोहित ने जैसे झख मारकर उसके हाथ में एक और कुश दे दिया।

बिल्कुल नई काट का कोट पहने हुए एक आदमी इन दोनों के ठीक सामने खड़ा हो गया। वह घास पर जूता पहने चलता गया था। उसने कमर पर हाथ रख लिया और पैरों पर इस तरह बोझ डाला जैसे शिवराम के सीने पर सवार हो। शिवराम अपना काम करता रहा। सब लोग शिवराम को जानते थे। जब वह हाथ में पात्र लेकर घर के अंदर गया तब कोटवाले आदमी ने घूमकर इधर मुँह किया। वह कहना चाहता था इंटरवल। पर उसको कोई पहचाना ही नहीं। मिस्टर धर्मा हिले - मेरी तरफ। उन्होंने जेब में दोनों हाथ डाल लिए जैसे चोर हों। जेब में दोनों हाथ डाले और गर्दन सिकोड़े दो आदमी वहाँ और थे। इनमें एक की गरदन थी ही वैसी। उन्हें सब लोग ओछी नजरों से देख रहे थे। वे जेब में हाथ डाले दाएँ-बाएँ हिलने लगे।

शिवराम और पीछे-पीछे दूसरा आदमी घर से आ गया। वे लाश के पास से आए हैं। हाँडी से जोर का धुआँ निकला। जो कुछ हो रहा था पूरा हो गया। और शिवराम ने किसी को नहीं पहचाना। वह धूप में जाकर खड़ा हो गया और इंतजार करने लगा।

मैंने सोचा, इस वक्त एक दौर खूब तेज शराब का हो जाए। इस वक्त न सही, शाम को हम लोग फिर आएँ। जेब में हाथवाले न आएँ और चाहें तो शिवराम के रिश्तेदार भी न आएँ। मेरी जात का आदमी भी न आए।

लाश की गाड़ी। नहीं, यह कोई और गाड़ी थी।

दो आदमी धीरे-धीरे बहुत उदास चेहरा लिए मैदान में दाखिल हुए। वे दबे पाँव सीधे शिवराम की तरफ गए। हाँडी को लाँघ न जाएँ, मैं डरा। बहरहाल अब सब कुछ हो चुका था। इतने धीरे चलने की जरूरत न थी। एक मोटा था। दुबले ने सफेद कमीज पर इतनी कसके टाई बाँधी थी कि उसकी आँखें निकली पड़ रही थीं। मोटा बेअंदाज, जरूरत से ज्यादा उदास हो गया था और उसका चेहरा प्यार में डूबी औरत जैसा भरभरा आया था।

पहले मोटा शिवराम से कुछ बोला। उसने हाथ जोड़े और इस तरह गर्दन झुकाई जैसे अपने किए पर पछता रहा हो। दुबले ने मुस्कराकर सिर हिलाया जैसे यही वह भी कहना चाह रहा हो। दोनों दबे पाँव वापस चले गए।

लाश की गाड़ी को ग्यारह बजे आना था। वह अभी तक नहीं आई थी। शिवराम धूप में अकेला खड़ा था। अगर वह किसी से बात करना शुरू कर देता तो बाकी लोग जा सकते थे। उनका काम खत्म हो गया था।

लाश को लाओ, मैंने कहा, यही वक्त है, अब मैं अकेला हूँ।

मुख्यमंत्री के संपर्काधिकारी मिस्टर धर्मा को बता रहे थे कि मुख्यमंत्री जब तीस बरस के थे तब उन्होंने अपना लंबा कोट और ऊँचा साफा ईजाद किया था और तब से हर वक्त वही पहने रहते हैं। उनका मतलब था, वही पहनकर घर से बाहर आते हैं।

सिकुड़ी गर्दनवाले आदमी ने अपना झोला लपेट लिया और साइकिल खींचकर सड़क पर ले जाने लगा।

'कुछ लोगों को दफ्तर जाना है - तुम्हारी लाश की गाड़ी अभी तक नहीं आई?' एक ने किसी से पूछा।

नगर-निगम की लापरवाही पर थोड़ी-सी बहस हुई। किसी ने कहा, 'अच्छा हम लोग चलेंगे, जाना है।' 'हम लोग' पर जोर था, पर वह अकेला गया। एक और आदमी बोला, 'हम लोग भी जाएँ।' फिर बाकी बात बिना कहे ऐसे सिर हिलाने लगा जैसे गिड़गिड़ाने में हिलाया जाता है।

जिस वक्त लाश की गाड़ी आई वे सब लोग जा चुके थे जिन्हें मैं जानता था। तब जो बचे थे वे सब शिवराम के घर के अंदर चले गए। मैं बाहर खड़ा रहा। अब यह घटना खत्म हो रही है; मैंने सोचा। आखिरकार यह घटना जहाँ तक मेरा सवाल है, ठीक-ठाक खत्म हो जाएगी।

लाश की गाड़ी बहुत छोटी थी। ऐसा लगता था जैसे सिर्फ लाश की जगह उसमें रखी गई थी - जैसे कि यह मरनेवाले की जिम्मेदारी है कि वह उसमें चला जाए।

ड्राइवर ने उतरकर जोर से दरवाजा बंद किया। आवाज से मालूम हुआ कि गाड़ी मजबूत है। मुझे खुशी हुई।

शिवराम और तीन आदमी लाश को बाहर लाए। तीन दूसरे आदमी गाड़ी में सरक गए। लाश गाड़ी के आकार के लिहाज से ठीक बड़ी थी। उन्होंने उसे अंदर फर्श पर रख दिया।

फिर उन्होंने उसे बाहर निकाला क्योंकि शिवराम को अंदर बैठना था। पर शिवराम खुद टिकटी में हाथ लगाए था।

मैं देखने लगा कि कैसे करते हैं। उन्होंने मुझे नहीं बुलाया। शिवराम की तरफ का हत्था दूसरे ने अपने दूसरे हाथ से थाम लिया। शिवराम खाली हो गया। वह अंदर आ गया। अभी भी वह नंगे बदन था।

लाश दोनों लंबी सीटों के बीच फर्श पर लिटा दी गई। पीछे का दरवाजा बंद हो गया।

इसके बाद मैं निश्चिंत था। लेकिन गाड़ी नहीं चली। ड्राइवर झाड़ियों की आड़ में गया हुआ था।

जल्दी से चलकर मैं सड़क पर आ गया। बहुत कम वक्त था। ड्राइवर को आखिर कितनी देर लगती, भले ही जाड़े के दिन हों। उसके फारिग होने से पहले ही मुझे ओझल हो जाना था।